

कई बड़ी हस्तियों की शादी हुयी, शोर ऐसा था मानो वे इस मुल्क के लिए कोई बड़ा काम कर रहे थे

निवेदिता शकिल

पूरा अखबार का पत्रा शादी के रंग में डूबा हुआ था। हमारे देश में कहने को राजा और रजवाड़े का दौर चला गया है पर ये सब अपने नए रूप में लौट आये हैं। फ़िल्मी हस्तियों से लेकर पूंजीपतियों और राजनीति से जुड़े हुए लोगों के घर में हुयी शादी में जिस तरह धन और आड़म्बर का अश्लील प्रदर्शन हुआ उसने इस देश के 40 करोड़ गरीब लोगों की गरीबी का मजाक बनाया।

ऐसे समय में जब पूंजी का दबदबा हो, जब नैतिक मूल्य के पतन का दौर हो ठीक इसी समय में बिहार के एक छोटे से जिले अररिया में एक ऐसी शादी हो रही है जो हमें ये उम्मीद दिलाती है की अभी भी मूल्य बचे हुए हैं। मनुष्यता बची हुयी है।

हमारी युवा पीढ़ी एक नयी मिसाल कायम कर रही है। ये हैं विजय और चांदनी। आज इनकी शादी है। इस युवा जोड़ी को मेरी शुभकामनाएं। जिन्होंने तय किया ना देहज लेंगे ना शादी में कोई आड़म्बर करेंगे। जन जागरण शक्ति संगठन से जुड़े इस युवा जोड़ी ने यह भी तय किया है कि वे पारंपरिक शादी के उन शपथ के खिलाफ नयी शपथ पुस्तिका तैयार करेंगे जो पितृसत्ता का विरोध करता हो, जो मनुवादी नहीं हो।

इस पुस्तिका को जनजागरण संगठन के साथियों में मिलकर तैयार किया है। ये सात फेरे लेंगे। जिसमें उदारता, नैतिकता, धैर्य, एकाग्रता और ज्ञान विकसित करने के लिए एक दूसरे की मदद करेंगे। इस तरह सात फेरे के अलग अलग मायने हैं जिसका मूल स्वर है एक दूसरे का साथ बराबरी और मुहब्बत का हो। फिर धान कुटाई की रस्म होगी। जिसमें पंडित ये शपथ दिलाएंगे की वे जीवन के सारे निर्णय में एक दूसरे की राय लेंगे। रसोई में सामान भागीदारी होगी। हम सब को इस तरह की शादी और सादगी के साथ खड़ा होना चाहिए। जो लोग बाज़ार और पूंजी के इस खेल के खिलाफ खड़े हुए और खड़े हैं उन सब को मेरा सलाम।

जिस देश में तकरीबन 100 करोड़ लोगों से ज्यादा की जनसंख्या है। प्रगति के मानवीय इंडेक्स पर हमारी गिनती 175 देशों से 138 नंबर पर होती है। हमारे देश के 60 करोड़ लोगों के पास पशुओं से बेहतर जिन्दगी जीने के साधन नहीं हैं, एक वैसे देश में पूंजी का इतना थोड़ा प्रदर्शन अश्लीलता है। अम्बानी की बेटी का करोड़ों रूपये का लहंगा जिस लहंगे में सोने और चांदी के नक्कासी किये हुए थे, किसी ने अपनी बेटी को सोने से तौल दिया, किसी ने पूरा शामियाना नोटों से बनाया क्या इससे उबकाई नहीं आती है।

हाल में बिहार में लालू प्रसाद के बेटे की शादी में 50 हजार लोगों को खाने पर बुलाया गया। क्या एक गरीब मुल्क में इस तरह के प्रदर्शन पर कोई आवाज उठी? क्या हमारे पास शालीन और सादगी से शादी करने के उदाहरण नहीं हैं.....

मैं जब युवा हो रही थी तो राजीव गाँधी की सादगी से हुयी शादी के बारे में सुना था। हमारे देश के और ऐसे कई उदाहरण हैं जिनसे पूंजी और आड़म्बर के खिलाफ मिसाल कायम किया। शादी हमारे दौर का सबसे बड़ा बाज़ार है। ये बाज़ार आम लोगों के मन में भी ललक पैदा करता है। गरीब से गरीब आदमी भी शादी में अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करता है।

बाज़ार ने हमारे समय को हिंसक बनाया है। करोड़ों रूपये देकर भी हम अपनी बेटियों को सुरक्षित जिन्दगी नहीं दे सकते। तो फिर हम सब क्यों नहीं पूंजी और बाज़ार की इस अश्लीलता के खिलाफ खड़े हों।

खबर (दार)

मोदी और मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन !

हिटलर की टक्कर के आत्मकामी व्यक्तित्व विकार वाले मोदी और ट्रम्प की एक बड़ी दिक्कत है। आज के मीडिया युग में सिर्फ हिटलर होना काफी नहीं, उन्हें अपना गोएब्लेस भी बनना पड़ता है। यानी तानाशाह भी और झूठ की मशीन भी !

कभी बिहार चुनाव के दौर में तक्षशिला को वहीं का बताने वाले मोदी के अब कर्नाटक चुनाव प्रचार में, जवाहर लाल नेहरू की भगत सिंह से शत्रुता जैसा मुद्दा छेड़ने से संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती कि उन्हें चुनावी विजय तो किसी भी कीमत पर चाहिए ही। अन्यथा, 2019 को लेकर उनकी उलटी गिनती अभी से शुरू हो जायेगी। तभी इस बार 'कर नाटक' चुनाव प्रचार में उनकी महत्वाकांक्षी इतिहास शून्यता उनकी चुटीली राजनीतिक वक्तूता से भी आगे निकल गयी।

मोदी की हर भाव-भंगिमा पर गिद्ध दृष्टि रखने वाले एनडीटीवी के रवीश कुमार ने भी मोदी को इतिहास का सबक पढ़ाने का यह मौका नहीं गंवाया। अपने 10 मई के 'प्राइम टाइम' का एक बड़ा हिस्सा उन्होंने जवाहर लाल नेहरू के भगत सिंह से संबंधों की मोदी की आरोपित व्याख्या को इतिहास संदिग्ध करने में लगा दिया।

रवीश कुमार ने बेशक मोदी उपहास का अपना मतव्य हासिल कर लिया हो पर क्या मोदी को इतिहास की किसी वस्तुगत समझदारी की जरूरत भी है? मानना चाहिए कि उनके पास अपने सलाहकार भी होंगे और अपने इतिहासकार भी। इन्हीं के दम पर चुनावी सफलता की मंजिलें तय करते हुए वे देश के प्रधानमंत्री बने बैठे हैं।

मोदी से चिढ़ने वाले उनकी तुलना प्रायः जर्मनी के सार्वकालिक खलनायक, द्वितीय विश्वयुद्ध दौर के तानाशाह, हिटलर से करते आये हैं। जबकि मोदी के प्रशंसक उन्हें अमेरिका के वर्तमान संकीर्ण राष्ट्रवादी राष्ट्रपति ट्रम्प के अवतार में देखने को आतुर रहते हैं। मनोविज्ञानी नजरिये से भी दिलचस्प हैं ये तुलनायें।

हिटलर और ट्रम्प दोनों को ऐतिहासिक यथार्थ से कटा हुआ व्यक्तित्व माना जाता है। दोनों का व्यापक मनोविज्ञानी विश्लेषण भी मिलेगा। होलोकॉस्ट और विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में हिटलर पर तो ऐसी शोध की भरमार है। ट्रम्प के राष्ट्रपति चुने जाने के बाद अमेरिकी मीडिया के एक वर्ग की चिंता रही है कि कहीं उनका राष्ट्रपति अपनी सायकायटिक दवाएं खाने में कोताही तो नहीं कर रहा ? भारत में नेताओं के ऐसे विश्लेषण का रिवाज नहीं है। हालाँकि, दिलचस्प होगा यदि ऐतिहासिक यथार्थ से कटे नरेंद्र मोदी का भी मनोविज्ञानी नजरिये से मूल्यांकन हो।

हिटलर और उसके गिरोह के नरसंहारों और युद्ध अपराधों का सिलसिला इतना व्यापक और अमानवीय रहा था कि एक प्रमुख मनोविज्ञानी / सायकायटिस्ट वर्ग का यहाँ तक मानना है कि उन्हें मनोविज्ञानी मूल्यांकन का विषय बनाना, उनके कृत्यों की आपराधिक विभीषिका को कमतर करने जैसा हो जाएगा। ध्यान रहे कि हिटलर के जीवन काल में उसके मूल्यांकन से जुड़े दो मनोचिकित्सकों को भी आत्महत्या करनी पड़ी थी।

30 नवम्बर 2017 के न्यूयॉर्क टाइम्स में इस शीर्षक से एक चिट्ठी छपी, "The Dangerous Case of Donald Trump: 27 Psychiatrists and Mental Health Experts Assess a President." इसमें ट्रम्प को यथार्थ से कटा हुआ व्यक्ति बताया गया। साथ ही अपील थी कि क्योंकि ऐसे अन्य तमाम मामलों की तरह राष्ट्रपति को अलग-थलग रख कर मूल्यांकन करना संभव नहीं है, लिहाजा इसका कोई न कोई रास्ता निकाला जाए।

जैसे हिटलर ने 'यहूदी मुक्त जर्मनी' और ट्रम्प ने 'आप्रवासी मुक्त अमेरिका' को अपना जुनून बना डाला, कुछ उसी राह पर मोदी का 'कॉंग्रेस मुक्त भारत' भी चल पड़ा है। ऐतिहासिक यथार्थ से कटने पर कहीं पहुँचा जा सकता है, यह मोदी गिरोह के रोजाना के नेहरू फोबिया में देखा जा सकता है। सवाल है क्या भारत में मनोविज्ञानी / सायकायटिस्ट प्रधानमंत्री का सचेत मूल्यांकन कर पाने की स्थिति में है ?



मनमोहन की पगड़ी में मोदी : ऐतिहासिक यथार्थ से कटे हुए

अध्यात्म - भारत की विकराल समस्या

संजय श्रमण
भारत का अध्यात्म असल में एक पागलखाना है, एक खास तरह का आधुनिक षड्यंत्र है जिसके सहारे पुराने शोषक धर्म और सामाजिक संरचना को नई ताकत और जिन्दगी दी जाती है।

कई लोगों ने भारत में सामाजिक क्रान्ति की संभावना के नष्ट होते रहने के संबंध में जो विश्लेषण दिया है वो कहता है कि भारत का धर्म इसके लिए जिम्मेदार है। निश्चित ही भारत का धर्म प्रतिक्रान्ति का हथियार है लेकिन सर उपर उपर नजर आने वाले इस धर्म को जिम्मेदार ठहराना पूरी तरह ठीक नहीं है।

धर्म मोटे अर्थों में कर्मकांड, विश्वास और पूजा पद्धति इत्यादि इत्यादि का जमघट होता है, ये स्वयं अपना स्रोत नहीं है बल्कि ये भी किसी अन्य गहरी विधा के गर्भ से जन्मता है। ठीक से कहें तो भारतीय धर्म का मूल उसके भाववादी दर्शन में है।

इस लोक के शोषण और सच्चाइयों से भाग कर परलोक में परम शान्ति या मोक्ष को खोजते हुए जन्म दर्शन (भवचक्र) से बाहर निकलना इस दर्शन का इसका मूल लक्ष्य है। ऐसे लक्ष्य असल में इस जमीन पर चल रहे जीवन को सम्मान नहीं देते बल्कि किसी आसानी लोक या हवा हवाई स्वर्ग में या मोक्ष या बैकुंठ को सम्मान देते हैं।

जो लोग ये कहते हैं की स्वर्ग या मोक्ष की कल्पना इस जमीन पर घट रहे जीवन के खिलाफ है वे बहुत हद तक सही हैं। इसके बावजूद ये वक्तव्य अधूरा है। मेरा गहरा अनुभव ये है की स्वर्ग या मोक्ष की कल्पना भी तभी उठती है जबकि आपके समाज में जमीनी जीवन के खिलाफ एक निर्णायक मनोवृत्ति बन चुकी हो।

उदाहरण के लिए भारत में सामाजिक और लौकिक जीवन की जमीनी सच्चाइयों को छुपाते हुए उनमें पल रही सदांश और बीमारी को लगातार दबाते हुए समाज में यथास्थिति बनाये रखना ही भारत की परम्परा रही है। भारत में पुरोहित वर्ग, शासक वर्ग और व्यापारी वर्ग ने हमेशा से एक खास तरह की सामाजिक संरचना को मजबूत बनाया है। इस संरचना में अस्सी प्रतिशत कामगारों मजदूरों, स्त्रीयों और अछूतों को पूरी व्यवस्था के लाभों से वंचित रखने का काम किया है। यह काम सैनिक बल से या लठेतों के जरिये नहीं किया जा सकता। इसे सामाजिक धार्मिक विश्वास के जरिये ही किया जा सकता है। इस खास तरह की अमानवीय सामाजिक संरचना को बनाये रखने के लिए धर्म ने बड़ी चतुर्दारी से हजारों साल तक बढिया काम किया है।

भारत के धर्म ने कर्मकांडों और त्योहारों

के जरिये इन अस्सी प्रतिशत बहुजनों के बीच निश्चित ही एक खास तरह की गुलामी, कायरता और भाग्यवाद को फैलाया है। विशेष रूप से बहुजनों की स्त्रीयों को इस धर्म ने ब्रत उपवासों, त्योहारों आदि के जरिये एकदम गुलाम और कायर बनाया हुआ है।

ये गुलाम और डरपोक स्त्रीयाँ एक डरपोक कौम को जन्म देती हैं जो किसी भी बदलाव या तर्क की बात से डरते हैं। ये अस्सी प्रतिशत डरपोक और दिशाहीन लोग वही हैं जिन्हें सामाजिक क्रान्ति की सबसे ज्यादा जरूरत है लेकिन ये खुद उस क्रान्ति को रोकने में सबसे बड़ी भूमिका निभाते हैं।

भारतीय धर्म को और उसके स्वाभाविक परिणाम को इस तरह देखना बहुत आसान है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन मेरा अनुभव ये बताता है कि हमें धर्म के बाह्य कर्मकांडीय स्वरूप पर प्रश्न उठाने से या उसे ध्वस्त कर देने भर से कोई स्थाई समाधान नहीं मिलने वाला है। बाहरी कर्मकांड रुक भी जाएँ तो यह जहरीली अमरबेल फिर से पनप जायेगी।

इसका जीवन स्रोत कहीं और छुपा हुआ है। आप गौर कीजिये इस समाज के पढ़े लिखे तबके पर, ये शहरी मध्यमवर्ग तबका धर्म के बाहरी कर्मकांड जैसे कि यज्ञ, हवन, बलि, श्राद्ध, तीर्थयात्रा, दान दक्षिणा, ब्राह्मण भोज आदि नहीं करता है। ये तबका - जिसमें सुशिक्षित इंजीनियर, डॉक्टर, वकील, प्रबन्धक, और हर तरह के पेशेवर और नई पीढ़ी के युवा या अप्रवासी भारतीय आते हैं - वे ग्रामीण या कस्बाई कर्मकांड नहीं करते हैं। वे लोग बहुत मौकों पर प्रगतिशील भी नजर आते हैं।

अक्सर वे पार्टी इत्यादि में शराब और मांस का सेवन करते हुए मिल जाते हैं। यही लोग शहरों में लिव इन रिलेशन और समलैंगिक शादियों सहित लोकतंत्र, साम्यवाद, क्रान्ति आदि के झंडे भी लहराता हुआ मिल जायेंगे। ऐसा करते हुए वे खुद की और दूसरों की नजरों में स्वयं को "गैर-रूढ़िवादी" सिद्ध कर देते हैं। लेकिन आत्मा परमात्मा और पुनर्जन्म में इनका विश्वास कभी कम नहीं होता।

सरल भाषा में समझें तो इसका मतलब ये हुआ कि ये प्रगतिशील युवा वर्ग सिगरेट शराब और मांस सहित फ्री सेक्स के बावजूद पूरी उसक के साथ अंदर से धार्मिक बना रहता है और इस सड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखता है। ये एक विचित्र लेकिन परेशान करने वाला तथ्य है।

इसका ये अर्थ हुआ कि बाहरी आडंबरों से भारत के इस धर्म का या इस धर्म के वास्तविक जहर का कोई अधिक सम्बन्ध नहीं है। बल्कि बाहरी आडंबरों और कर्मकांडों से भी कहीं अधिक गहराई में छुपा इसका जहरीला अध्यात्म या रहस्यवाद ही इसका असली जीवन

स्रोत है।

उसी स्रोत से जहर का वो फव्वारा फूटता है जो हर दौर में हर पीढ़ी में पूरे भारत को पागल बनाये रखता है। इस बात को गहराई से समझना होगा, ये थोड़ी उलझी हुई बात है।

असल में भारत का धर्म कोई एकरूप बात नहीं है इसके हजारों विभिन्न रंग और चेहरे हैं। इसी को विविधता कहके महिमामंडित किया जाता है। लेकिन इन विविध रूपों के भीतर एक सा जहर लहू बनके बहता है। वह लहू है इसकी 'आत्मा परमात्मा और पुनर्जन्म का मान्यता'। इसी जहरीली त्रिमूर्ति के गर्भ से परलोक को महिमा और इस लोक की निंदा जन्म लेती है।

बाहरी आडंबर, कर्मकांड कुछ भी हों अंदर ही अंदर इनमे कर्म का विस्तारित सिद्धांत (इस जन्म का कर्म अगले जन्म को तय करेगा) चलता रहता है। इसी में लपेट कर दान दक्षिणा, पुण्य, पाप आदि की सलाहकारी भी चलती रहती है, इसी से ध्यान साधना के तरीके बनाये जाते हैं और लोगों को व्यर्थ के तन्त्र मन्त्र ध्यान भजन में उलझाया जाता है।

बाहर के कर्मकांड बदल भी जाएँ तो थोड़े दिनों बाद इस जहरीले कुँए से नई जहरीली बेल पनप कर समाज पर जल जाती है। उदाहरण के आजकल के पूजा पंडाल जगारते जुलूस, सामूहिक भोज आदि भारत में बहुत पुराने नहीं हैं।

जब स्वतन्त्रता संघर्ष के दिनों में आजादी के आन्दोलन के लिए या तथाकथित हिन्दू जीवन दर्शन को प्रचारित करने के लिए हिन्दुओं सहित बहुजन जातियों को संगठित करने की आवश्यकता हुई तब पुराने दर्शन और कर्म के सिद्धांत पर आधारित कर्मकांडों को नये रूप में ढाल दिया गया और नये देवी देवताओं सहित नई आरती, नये पूजा विधान, जुलूस, जगारते, डांडिया, सामूहिक भोज आदि निर्मित कर दिए गये इनमें शामिल होने वाले लोगों के मौलिक मनोविज्ञान अभी भी आत्मा, परमात्मा और कर्म के विस्तारित सिद्धांत और पुनर्जन्म की धारणा से ही नियंत्रित करने के उद्देश्य से ही ये इनोवेशन किया गया था। इन नये कर्मकांडों से इन्हें आजाद करवा भी दिया जाए तो कोई बदलाव नहीं होने वाला। उस अमरबेल में से फिर नये अंकुर अपने आप निकल आयेंगे।

यहाँ तक कि हिन्दू धर्म छोड़कर जाने वाले दलितों बहुजनों में भी इसी कारण कोई खास बदलाव नहीं आता है। उनके मन में गहराई में ईश्वर, आत्मा और पुनर्जन्म सहित मोक्ष या स्वर्ग या जन्नत जैसे अंधविश्वास भरे ही रहते हैं। इन जहरीले बीजों को अपने साथ ले जाकर वे ध्यान, समाधि मोक्ष, जन्नत आदि के लिए

नये कर्मकांड खुद ही बना लेते हैं।

वे भी पुराने देवी देवता छोड़कर नये देवी देवता और तीर्थ, मन्दिर ध्यान केंद्र आदि बना लेते हैं और नये धर्म में भी पुराने भारतीय धर्म की जहरीली खुराक फैला देते हैं। ये एक लाइलाज बीमारी नजर आती है।

अब बड़ा सवाल ये है कि इसका इलाज कैसे हो ?

मेरा स्पष्ट मानना है कि भारत का धर्म जिस दर्शन से उपजा है और जिस अध्यात्म या रहस्यवाद को महिमामंडित करके आगे बढ़ता है उसकी तरफ कभी गंभीरता से उंगली नहीं उठाई गयी है।

हमें धार्मिक कर्मकांडों और पूजा पद्धतियों से आगे बढ़कर इस धर्म के मूल दर्शन पर चोट करनी होगी। इस दर्शन पर चोट करने से ही हम ओशो रजनीश, आसाराम, निर्मल बाबा, राम रहीम, श्री श्री, जग्गी इत्यादि बाबाओं को रोक सकेंगे जो कि हर पीढ़ी में पुनर्जन्म के जहरीले दर्शन के आधार पर ध्यान, समाधि मोक्ष आदि की अंधविश्वासी व्याख्याएं फैलाते हैं।

ये ध्यान देने लायक बात है कि जब जब भारत के शोषक धर्म पर संकट आता है, इसमें तरह तरह के बाबा पैदा हो जाते हैं जो क्रान्ति और बदलाव के नाम पर गुमराह करने के लिए खड़े हो जाते हैं।

ओशो रजनीश और राम-रहीम जैसे ये बाबा पुराने दर्शन से विज्ञान और पश्चिमी क्रान्ति को जोड़कर ऐसी भयानक सम्मोहनकारी शराब बनाते हैं कि कई पीढ़ियाँ इसमें से बाहर नहीं निकल पाती।

आत्मा परमात्मा और पुनर्जन्म के अंधविश्वास को जस का तस बनाये रखते हुए उसके ऊपर ऊपर के बेल बूटों में थोड़ा बदलाव करके ये पाखंडी बाबा नई पीढ़ियों को फिर से उसी दलदल में घसीट लेते हैं। ये भयानक रूप से धूर्त और अवसरवादी होते हैं, ये विज्ञान मनोविज्ञान लोकतंत्र साम्यवाद समाजवाद आदि की व्याख्या करते हुए आत्मा परमात्मा को भी महिमामंडित करते जाते हैं और ऐसा आभास पैदा करते हैं कि पुनर्जन्म और कर्म का विस्तारित सिद्धांत इन सब आधुनिक क्रान्तिकारी सिद्धांतों के साथ फिट होता है।

इसके लिए वे अध्यात्म और रहस्यवाद का सहारा लेते हैं। पुरानी पूजा और कर्मकांडों के बदले वे आधुनिक पश्चिमी ढंग के नाईट क्लब और नाईट क्लब कल्चर की तरह जगारते, कीर्तन, ध्यान, समाधि आदि के नये कर्मकांडों की रचना करते हैं।

युवा वर्ग इससे एकदम से सम्मोहित हो जाता है। अपने परिवारों, गाँवों, कस्बों में जाति, वर्ण, अमीर गरीब आदि के विभाजन की चोट

से सताए हुए इस युवा वर्ग को इन पाखंडी बाबाओं के ध्यान केंद्रों और डेरों में थोड़ा अपनेपन और भाईचारे का एहसास होता है। इस विभाजित समाज में एकसाथ बैठने, खाने, नाचने का मौजा उन्हें पहली बार मिलता है।

इस तरह नई पश्चिमी जीवन शैली के कुछ टुकड़ों को पुरानी जहरीली खुराक में मिलाकर एक नया कहीं अधिक जहरीला काकटेल बनाया जाता है जो पुराने कर्मकांड से भरे धर्म की तुलना में आधुनिक नजर आते हुए भी उससे कहीं अधिक मारक और भयानक होता है। इस तरह ओशो रजनीश जैसे ये पाखंडी बाबा धर्म के साथ आधुनिकता को जोड़कर पुराने जहरीले दर्शन को एक नई जिन्दगी दे देते हैं और नये युवाओं, शहरी माध्यम वर्ग और पेशेवरों को फूसलाते हुए उसी सनातन सुरंग में खींच ले जाते हैं।

इसलिए सभी बहुजनों, दलितों, मजदूरों, स्त्रीयों आदिवासियों को मेरी यही सलाह होती है कि वे धार्मिक कर्मकांड का विरोध करते हुए वहाँ तक न रुक जाएँ। भारत के पुनर्जन्मवादी अध्यात्म से ध्यान, समाधि, साधना और मोक्ष के नाम पर जितने बाबा और ध्यान केंद्र आदि चल रहे हैं उनसे भी बचकर रहें।

ये ध्यान समाधि सिखाने वाले लोग असल में पुराने कर्मकांडीय लुटेरों के ही प्रगतिशील एजेंट हैं। आप एक बार इनके चंगुल में फंसकर ध्यान समाधि सीखने जाइए, धीरे धीरे ये आपको भूत प्रेत, श्राद्ध, देवी देवता पौराणिक बकवास का महात्म्य आदि सिखाने लगते हैं और कुछ ही महीनों में अच्छे खासे सुशिक्षित पेशेवर लोग तोते वाले ज्योतिषी की तरह बकवास करने लगते हैं।

ये जहरीले धर्म का नई परिस्थिति में खुद को जिंदा बनाये रखने का हथकंडा है। पश्चिमी क्रान्तियों के प्रभाव में जीने वाले भारत में धर्म और कर्मकांड अब उतने आकर्षक नहीं रह गये हैं। अगर धोती कूर्ता या तिलक कुमकुम लगाने वाला संस्कृत बोलने वाला कोई पंडित खड़ा हो जाए तो उसे सुनने के लिए आज का युवा वर्ग उत्सुक न होगा।

लेकिन वही पोंगा पंडित अगर फेंसी गाउन, चोगे, रोलस रोयस या मर्सिडीज कार लेकर फाइव स्टार आश्रम में खड़ा हो जाए और इंग्लिश में बात करते हुए फ्रायड, नीत्से, मार्क्स और डॉर्विन के तर्क देने लगे तो शहरी मध्यम वर्ग का पेशेवर युवा उससे प्रभावित होने लगेगा। एक बार ये युवा इनके चक्कर में फस जाएँ फिर ये बाबा लोग उन्हें कहीं का नहीं छोड़ेंगे।

यही असली खेल है। इस खेल को समझे बिना भारत में बहुजन और स्त्री मुक्ति को कोई संभावना नहीं हो सकती। ये बात भारत के मुक्तकामियों को गहराई से नोट कर लेनी चाहिए।